Mob. : 9931444467
8340539341

Dr. Md. Sayeed Alam

Associate Professor
Deputy Director of UGC, HRDC, P.U.
P.G. Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005 (Bihar)

Director : Former Deputy Director of DDE, P.U & Senate Member of M.U. Gaya
Member : Former Senate & Finance Committee, Approval Fixation & Seniority, P.U.
Chairman : Haji Hakim Mahmood (H.H.M.) Educational & Welfare Trust, Gaya (Bihar)

Professor's Qtr., Krishna Ghat, Patna University, Patna - 800 005
E-mail : sayeedpu@gmail.com, hhmgaya@gmail.com

(५) भारतीय उपनिवेशों का प्रारम्भ

दक्षिण-पूर्वी एशिया के विविध देशों तथा द्वीपों के साथ भारत का सम्बन्ध व्यापार के प्रयोजन से प्रारम्भ हुआ था। व्यापार द्वारा धन कमाने के प्रयोजन से ही भारत के व्यापारी इस क्षेत्र के प्रदेशों में जाया-आया करते थे। बाद में धर्म प्रचार तथा उपनिवेशों की स्थापना के लिए भी भारतीय लोग वहाँ जाने लगे। पर इसमें सन्देह नहीं, कि बौद्ध, मौर्य तथा शुंग युगों में भारत और इन देशों के सम्बन्ध का प्रधान कारण व्यापार ही था। जातक कथाओं और कथासरित्सागर सदृश कथा-साहित्य में दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की यात्रा के विषय में जो भी कथाएँ दी गई हैं, उन सबमें यात्रियों और नाविकों का यही उद्देश्य था कि इन देशों में भारतीय पण्य को बेचकर और वहाँ के पण्य व सोने-चाँदी को भारत लाकर धन कमाया जाए। इन कथाओं के व्यापारियों तथा नाविकों को न तूफान से जहाज के नष्ट हो जाने की चिन्ता थी, न मार्ग में दस्युओं से लूटे जाने की, और

Scanned with CamSc

न किसी अज्ञात द्वीप में पहुंच जाने पर विकट परिस्थिति का सामना करने की। जहाज द्वारा समुद्रतट पर पहुंच कर वे ऐसे प्रदेशों में भी अपने पण्य ले जाते थे, जहाँ कोई सड़कें नहीं थीं। वृक्षों की जड़ों और लता-वल्लरियों के सहारे विषम भूमि पर वे आगे बढ़ते थे, और भेड़ बकरियों द्वारा बनायी गई पगडण्डियों से चल कर अपने लक्ष्य पर पहुंचते थे। धन की लालसा में ये व्यापारी कैसे-कैसे कष्ट उठाते थे, इसका भी प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन किया गया है। पर इनके लिए धन का आकर्षण इतना अधिक था, कि ये यात्रा के कष्टों की जरा भी परवाह नहीं करते थे। दक्षिण-पूर्वी एशिया के विविध प्रदेशों से उन्हें इतना बहुमूल्य पण्य व सोना चांदी आदि प्राप्त हो जाते थे, कि इनके नाम ही सुवर्णद्वीप, रूप्यकद्वीप, ताम्रद्वीप, यवद्वीप, शंखद्वीप, कर्पूरद्वीप और नारिकेल द्वीप आदि रख दिए गये थे। इन नामों से ही यह सूचित हो जाता है, कि इन प्रदेशों से उन्हें किस प्रकार के पण्य की प्राप्ति हुआ करती थी। धन के लिए सुदूर प्रदेशों की यात्रा करने वाले ये प्राचीन भारतीय व्यापारी कोलम्बस और वास्को-डी-गामा सदृश मध्यकालीन यूरोपियन यात्रियों के समान ही साहसी थे। जिन भारतीयों ने पहले-पहल दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन प्रदेशों का पता किया, और उनके निवासियों के साथ व्यापार प्रारम्भ किया, यदि उनके यात्रा विवरण इस समय उपलब्ध हो सकें, तो वे कोलम्बस आदि के यात्रा वृत्तान्तों से किसी भी प्रकार महत्त्व में कम न होंगे।

व्यापारियों का अनुसरण कर भारत के धर्मप्रचारकों ने भी इन प्रदेशों में जाना प्रारम्भ किया। राजा अशोक के समय में आचार्य उपगुप्त (मोद्गलिपुत्र तिष्य) के नेतृत्व में विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए जो आयोजन किया गया था, उसमें सोण और उत्तर नाम के स्थविरों को सुवर्णभूमि भेजा गया था। वहाँ के राजा के कोई सन्तान जीवित नहीं थी, क्योंकि उसके समीपवर्ती समुद्र में एक राक्षसी रहती थी, जो राजा की सन्तान को जन्म लेते ही खा जाती थी। सोण और उत्तर ने उस राक्षसी की शक्ति का नाश किया, जिससे राजा की सन्तान की अकाल मृत्यु का भय दूर हुआ। सम्भवतः, महावंश की इस कथा द्वारा यह संकेत मिलता है, कि धर्म प्रचार के लिए सुवर्णभूमि जाने वाले के स्थविर चिकित्सा में भी प्रवीण थे, और उन्होंने रोग रूपी राक्षसी का संहार कर राजा की सन्तान की प्राणरक्षा की थी। कम्बोडिया का फू-नान राज्य कौण्डिन्य नाम के एक ब्राह्मण द्वारा स्थापित किया गया था, जो शायद वहाँ धर्म प्रचार के लिए ही गया था। चम्पा के एक उत्कीर्ण लेख के अनुसार उरोज नामक ऋषि को शिव ने चम्पा का राजा बना कर भेजा था। जब ये ऋषि, स्थविर व धर्म-प्रचारक दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन प्रदेशों में जाने लगे, तो उनका सम्पर्क वहाँ के निवासियों के साथ हुआ, जो सभ्यता के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए थे। भारतीय प्रचारकों से उन्होंने न केवल धर्म की शिक्षा ग्रहण की, अपितु सभ्यता का पाठ भी पढ़ा। ये प्रचारक वहीं पर बस गए, और वहाँ की स्त्रियों से उन्होंने विवाह-सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए। इस प्रकार अनेक ऐसे उपनिवेशों का सूत्रपात हुआ, जिनके निवासी संकर जातियों के थे, पर जिन्होंने भारतीयों की संस्कृति तथा धर्म को पूरी तरह से अपना लिया था।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के क्षेत्र में बहुत-से भारतीय उपनिवेश क्षत्रिय राजवंशों के

Scanned with CamSc

कुमारों द्वारा भी स्थापित किए गए थे। ये कुमार अपने राज्य व मातृ-भूमि को सदा के लिए नमस्कार कर अपने साथियों के साथ इस क्षेत्र के विविध प्रदेशों में आ बसे थे। कम्बोडिया, विएत-नाम, मलाया, बरमा आदि के कितने ही प्राचीन भारतीय उपनिवेशों में यह अनुश्रुति विद्यमान थी, कि उनके राजवंशों का प्रारम्भ भारत के राजकुमारों द्वारा किया गया था। इन अनुश्रुतियों का उल्लेख अगले अध्यायों में यथास्थान किया जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है, कि कुशाण, शक आदि विदेशी आक्रान्ताओं के कारण जब भारत के अनेक प्राचीन राज्यों की स्वतन्त्रता का लोप हो गया, तो उनके राजवंशों के अनेक साहसी राजकुमारों ने इन सुदूर प्रदेशों में जाकर अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किए। भारत के इतिहास में यह परम्परा कोई नई नहीं थी। मगधराज जरासन्ध के आक्रमणों के कारण अन्धकवृष्णि गण के लोग कृष्ण के नेतृत्व में द्वारका में जा बसे थे, और यवनों से आक्रान्त होकर पंजाब के मालव तथा शिवि गणों ने राजस्थान की मरुभूमि में प्रवास किया था। कुछ इसी ढंग की प्रक्रिया भारत के मध्यदेश के उन राज्यों तथा राजवंशों के साथ भी हुई, जिन्होंने कुशाणों तथा शकों द्वारा आक्रान्त किये जाने पर समुद्र पार के इन प्रदेशों में प्रवास किया और वहाँ नये उपनिवेशों व राज्यों की स्थापना की।

(६) सुवर्णभूमि के पुराने निवासी और भारत के साथ उनका सम्बन्ध

दक्षिण-पूर्वी एशिया के जिन प्रदेशों व द्वीपों में भारतीयों ने अपने उपनिवेश बसाये थे, वे सर्वथा गैर-आबाद नहीं थे। वहां अनेक जातियों का निवास था, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से जो विविध स्तरों पर थीं। कतिपय जातियाँ ऐसी थीं, जो पुरातन प्रस्तर युग के स्तर पर थीं, और सभ्यता में बहुत पिछड़ी हुई थीं। उनके वंशज वर्तमान समय में सुदूर जंगलों तथा पर्वतों की उपत्यकाओं में निवास करते हैं, और शिकार द्वारा निर्वाह करते हैं। खेतों का उन्हें परिज्ञान नहीं है। वहाँ ऐसी जातियों का भी निवास था, जो शिकारी दशा से ऊपर उठकर पशुपालक दशा पर पहुंच चुकी थीं और जिन्होंने खेती को भी प्रारम्भ कर दिया था। पर दक्षिण-पूर्वी एशिया की बहुसंख्यक जातियाँ अधिक उन्नत दशा में थीं, और उन्होंने खेती के साथ-साथ कतिपय उद्योगों व व्यवसायों का भी विकास कर लिया था। प्राचीन भारत के कथा-साहित्य में धन की लालसा से सुवर्णभूमि जाने वाले जिन नाविकों व व्यापारियों का उल्लेख है, दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन्हीं निवासियों के साथ उनका व्यापार-सम्बन्ध था और उन्हीं को भारत का पण्य बेचकर वे धन कमाया करते थे।

सभ्यता की दृष्टि से अपेक्षया अधिक समुन्नत इन जातियों को स्थूल रूप से 'मलय' या 'मालय' संज्ञा दी गई है। मलाया प्रायद्वीप, सुमात्रा, बोर्नियो, जावा, मदुरा, बाली, सेलेबस आदि के बहुसंख्यक निवासी इसी जाति के हैं, और भारत के लोग जब इन प्रदेशों में उपनिवेश बसाने के लिए गए, तो वहां इसी जाति का निवास था। सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में भारतीय लोग मलय लोगों की तुलना में अधिक उन्नत थे। अतः भारतीयों ने उनके प्रदेशों में न केवल अपने राज्य ही स्थापित किए, अपितु अपने धर्म, भाषा तथा संस्कृति का भी वहाँ प्रसार किया और सांस्कृतिक दृष्टि से मलय लोगों को

Scanned with CamScanner

अपने रंग में रंग लिया।

बरमा से विएत-नाम और उससे भी परे फिलिप्पीन तक फैली हुई मलय जातियों की भाषाओं का अध्ययन कर अनेक विद्वान् इस परिणाम पर पहुंचे हैं, कि इन भाषाओं का भारत की मुंडारी, सन्थाली व खासी भाषाओं के साथ सम्बन्ध हैं, और ये उसी भाषा-परिवार की हैं, जिसकी कि भारत की मुंडारी आदि भाषाएँ हैं। क्योंकि भाषा और नस्ल में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, अतः यह मानना भी असंगत नहीं होगा कि दक्षिण-पूर्वी एशिया की मलय जातियाँ और भारत की मुंडा व सन्थाल जातियाँ नस्ल की दृष्टि से एक ही परिवार की हैं। इस मत का प्रतिपादन सब से पूर्व जर्मन विद्वान् स्मिड्ट ने किया था, और भारत की मुंडारी आदि भाषाओं तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया की मलय भाषाओं में आधारभूत एकता की पहचान करने के अनन्तर उन्होंने यह मन्तव्य प्रस्तुत किया था कि मलय लोगों का आदि निवास-स्थान भारत में था, और वहीं से धीरे-धीरे पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व की ओर उनका प्रसार हुआ था। पहली और दूसरी सदियों में उपनिवेशों की स्थापना के लिए भारतीयों का जिस ढंग का प्रवाह पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी दिशाओं की ओर प्रारम्भ हुआ था, वैसा ही एक प्रवाह किसी अज्ञात प्राचीन काल में भारत में निवास करने वाली मुंडा, सन्थाली आदि जातियों का भी उन्हीं दिशाओं में हो चुका था। दक्षिण-पूर्वी एशिया के विशाल क्षेत्र में जो मलय जातियाँ निवास करती हैं, उनके पूर्वज भारत से ही वहाँ जाकर बसे थे। स्मिड्ट के इस मन्तव्य का समर्थन अन्य भी अनेक विद्वानों द्वारा किया गया, जिनमें सिल्वां लेवी, प्रज्युलुस्की, और ज्यूल ब्लाक के नाम उल्लेखनीय हैं। इन फ्रेंच विद्वानों ने स्मिड्ट के मत का समर्थन करते हुए यह प्रतिपादित किया, कि द्रविड़ और आर्य जातियों के प्रवेश से पूर्व मुंडा, सन्थाल, खासी आदि जो जातियां भारत में निवास करती थीं, वे न केवल दक्षिण-पूर्वी एशिया के विविध प्रदेशों तथा द्वीपों में ही फैलीं, अपितु दक्षिण-पश्चिम में वे मेडेगास्कर तक भी गईं। इन जातियों ने भारतीय आर्यों की भाषा, पूजाविधि तथा धार्मिक विश्वासों को प्रभावित किया। पर क्योंकि द्रविड़ों और आर्यों के आक्रमणों के कारण इनके लिए भारत में अपने पुराने प्रदेशों में निश्चिन्त रूप से बसे रह सकना सुगम नहीं रहा था, अतः ये अन्य देशों में चले जाने के लिए विवश हुईं, और इन्होंने बरमा, मलाया, सुमात्रा, जावा, मेडेगास्कर आदि को आबाद किया। जिन युक्तियों को प्रस्तुत कर स्मिड्ट, सिल्वां लेवी आदि विद्वानों ने इस मन्तव्य को प्रतिपादित किया है, उनका उल्लेख यहाँ कर सकना सम्भव नहीं है, और न उसका विशेष उपयोग ही है। यहाँ इतना संकेत कर देना ही पर्याप्त है, कि इन विद्वानों की युक्तिपरम्परा का आधार वह साम्य है, जो दक्षिण-पूर्वी एशिया की मलय भाषाओं तथा भारत की मुण्डारी, खासी आदि भाषाओं में पाया जाता है, और साथ ही उन पूजाविधियों, धार्मिक विश्वासों तथा पुरातन कथाओं की सत्ता है जो भारत तथा सुवर्णभूमि में प्रायशः सदृश रूप में पायी जाती हैं। स्मिड्ट ने दक्षिण-पूर्वी तथा पूर्वी एशिया की मलय भाषाओं को 'आउस्ट्रिक' संज्ञा प्रदान की थी, और मुण्डारी, खासी आदि भारतीय भाषाओं से आउस्ट्रिक भाषा की समता प्रदर्शित की थी। सिल्वां लेवी और प्रज्युलुस्की ने प्रतिपादित किया, कि इस आउस्ट्रिक भाषा का प्रभाव भारतीय आर्यों की संस्कृत आदि भाषाओं पर भी पड़ा, और

Scanned with CamScanner

संस्कृत के कितने ही शब्द मुण्डारी खासी (जो आउस्ट्रिक या मलय भाषा के परिवार की थीं) आदि पुरानी भाषाओं से लिए गए हैं। साथ ही, भारत में अनेक प्रदेशों के नाम शब्दों के द्वन्द्वों में प्रयुक्त होते रहे हैं, जैसे अंग-बंग, कलिंग-त्रिलिंग, कोसल-सोमल, उत्कल-मेकल और पुलिन्द-कुलिन्द। संज्ञावाचक शब्दों को इस प्रकार द्वन्द्व में प्रयुक्त करने की परम्परा आउस्ट्रिक भाषाओं में पायी जाती है, और संस्कृत में इसे वहीं से लिया गया है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में नागी और मत्स्यगन्धा के विषय में जो कथाएँ आती हैं, उनसे मिलती-जुलती कथाएँ दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक प्रदेशों में भी पायी जाती हैं। इससे भी यह परिणाम निकाला गया है, कि इन कथाओं का मूल-स्रोत एक ही है। संस्कृत साहित्य में इनका प्रवेश जिन जातियों के साथ सम्पर्क के कारण हुआ, वही जातियां इन्हें भारत से दूर दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी ले गईं। ये कथाएं ऐसे प्रदेशों में ही विकसित हो सकती थीं, जिनकी स्थिति समुद्र के समीप हो। उत्तर-पश्चिम की ओर से आये हुए द्रविड़ों और आर्यों में इनका विकास सम्भव नहीं था, क्योंकि इनका सम्बन्ध जल व सागर के साथ है। भारत की प्राचीन आर्य तथा द्रविड़ सभ्यताओं में अनेक तत्त्व ऐसे हैं, जो उनमें पूर्ववर्ती मुण्डा, सन्थाल आदि जातियों से आये हैं। धर्म के क्षेत्र में एक ऐसा तत्त्व योनि और लिंग की पूजा का है। पौराणिक हिन्दू धर्म में योनि और लिंग की पूजा को स्थान प्राप्त है। पर दक्षिण-पूर्वी एशिया के पुराने निवासियों में भी यह प्रचलित थी, जिसे उन्होंने उसी स्रोत में ग्रहण किया था, जिससे कि भारतीय आर्यों ने उसे प्राप्त किया था। यह स्रोत मुण्डा व खासी सदृश जातियों के अरिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता था।

कतिपय विद्वानों का यह भी मत है, कि अत्यन्त प्राचीनकाल में कभी सुवर्णभूमि या दक्षिण-पूर्वी एशिया के लोगों ने पश्चिम की ओर अपना प्रसार करते हुए भारत में भी प्रवेश किया था, और भारत की प्राचीन भाषा, कथाओं तथा धर्म के कतिपय तत्त्वों में दक्षिण-पूर्वी एशिया की भाषा आदि से जो सादृश्य है, उसका यही कारण है। इस मत के प्रतिपादकों में क्रोम और हार्नेल मुख्य हैं। इन विद्वानों का मत स्मिड्ट तथा सिल्वां लेवी आदि के मन्तव्य से पूर्णतया विपरीत है। पर बहुसंख्यक विद्वान् यही मानते हैं, कि अत्यन्त प्राचीनकाल में भी एक बार भारत में निवास करने वाली कतिपय जातियों के लोगों ने पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी दिशा में प्रवास किया था और वहाँ जाकर अपनी वस्तियाँ बसायी थीं। सुवर्णभूमि में जाकर बसने वाले ये लोग मलय या मालय जाति के थे, और वहां के निवासी वर्तमान समय में भी मुख्यतया इसी जाति के हैं। उनसे पहले जो लोग वहाँ बसते थे, उनके वंशज बहुत कम संख्या में हैं, और वे प्रायः सघन जंगलों में निवास करते हैं।

जो मालय या मलय जाति दक्षिण-पूर्वी एशिया के विविध प्रदेशों और द्वीपों में जाकर आबाद हुई, वह पहले भारत में निवास करती थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में मालव, मालय तथा मलय— इन तीन रूपों में इसका उल्लेख मिलता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'मालव' को आयुधजीवि संघों में परिगणित किया गया है। महाभारत में मालवों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है, और उनकी स्थिति उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण तीनों दिशाओं में बतायी गयी है। सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया, तो मालव

Scanned with CamSc

(ग्रीक-मल्लोई) गण से भी उसका युद्ध हुआ था। मालव गण पंजाब में था। राजस्थान के जयपुर क्षेत्र से भी मालव गण के बहुत-से सिक्के उपलब्ध हुए हैं, जो मौर्य युग के बाद के हैं। रामायण तथा मत्स्य पुराण में भी मालवों का उल्लेख है, और उनका निवास पूर्वी प्रदेशों में कहा गया है। प्राचीन साहित्य में अन्यत्र भी अनेक स्थानों पर मालवों का उल्लेख मिलता है। इससे इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता, कि प्राचीन काल में भारत में 'मालव' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जन (जाति या कबीला) था, और उसकी शाखाएँ इस देश में दूर-दूर तक फैली हुई थीं। यद्यपि इस जन के लिए प्राचीन साहित्य में प्राय: 'मालव' शब्द का प्रयोग किया गया है, पर 'मालय' शब्द भी कहीं-कहीं मिलता है। नासिक से प्राप्त हुए एक शिलालेख में 'मालय' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। पुराने समय में कतिपय शब्दों में य और व दोनों अक्षर एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हुआ करते थे, यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि प्रसिद्ध सातवाहन वंशी राजा पुलुमायी के लिए अनेक शिलालेखों में पुलुमावी भी प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार मालय के लिए मालव का प्रयोग किया जाना भी असंगत नहीं समझा जा सकता। वस्तुत:, मालव, मालय और मलय एक ही जाति थी, जो अत्यन्त प्राचीनकाल में भारत के बहुत-से प्रदेशों में बसी हुई थी, और फिर भारत से बाहर अन्यत्र भी फैल गई। भारत में कितने ही ऐसे प्रदेश व स्थान हैं जो इस जाति के नाम पर हैं। पंजाब का एक प्रदेश मांझा-मालवा कहाता है। एक मालवा मध्यप्रदेश में है, और सुदूर दक्षिण में मलाबार (मलयबार) है। पुराणों में जो सात कुलपर्वत गिनाये गये हैं, उनमें एक मलय पर्वत भी है। महावंश और टालमी के भूगोल के अनुसार लंका में भी एक मलय पर्वत था। दक्षिणी भारत के तमिलनाडु में भी एक मलय देश की सत्ता के संकेत प्राचीन साहित्य में विद्यमान हैं। बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध आचार्य वज्रबोधि ७१९ ईस्वी में धर्मप्रचार के लिए चीन गया था। उसका पिता काञ्ची के राजा का गुरु था, और वे मलय देश के निवासी थे। अलबरूनी के अनुसार मलय देश काञ्ची के १६० मील दक्षिण में था।

मालय या मालव जाति के लोगों ने भारत में जाकर जहाँ-जहाँ अपनी बस्तियाँ बसायीं, अपने जातीय नाम के चिह्न भी वे वहाँ-वहाँ लगाते गये। यही कारण है, जो दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा अन्यत्र कितने ही ऐसे स्थान हैं, जिनके साथ इस जाति का नाम किसी-न-किसी रूप में जुड़ा हुआ है। मलाया प्रायद्वीप का मलाया नाम स्पष्टतया इसी जाति के साथ सम्बद्ध है। सुमात्रा और मलाया प्रायद्वीप के बीच में मलक्का का जलडमरू-मध्य है। इस मलक्का का भी मालय से सम्बन्ध है। सुमात्रा में एक नदी मलायु है, और वहाँ का एक पर्वत भी इसी नाम का है। वहाँ के पाँच गाँव भी मलायु नाम के हैं, और वहाँ निवास करने वाली एक जाति भी मलायु कहाती है। लाओस का एक पुराना नाम माला या मालव भी है, और दक्षिण-पूर्वी एशिया के हजारों द्वीपों में एक मोलक्का भी है। मालदीव (मालद्वीप) भी सम्भवत: मालव जाति से सम्बद्ध है, और अफ्रीका के पूर्व में स्थित मागलस्सी (मैडागास्कर) द्वीप के नाम पर भी मालव का प्रभाव प्रतीत होता है। मागलस्सी और मालव का सम्बन्ध इस बात से भी सूचित होता है, कि इन्डोनीसिया की मलय भाषा का एक ऐसा रूप इस द्वीप में प्रचलित रहा है, जिसमें संस्कृत के शब्दों का

Scanned with CamSc

भी मिश्रण था। अनेक विद्वानों ने इससे यह परिणाम निकाला है, कि भारत की मालव या मालय जाति ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के समान हिन्द महासागर के मालदीव और मागलस्सी द्वीपों में भी प्रवास किया था और वहाँ भी अपनी बस्तियाँ बसायी थीं।

जिस मालव या मालय जाति ने भारत से बाहर जाकर सुदूर प्रदेशों में प्रवास किया था, वह आर्य या द्रविड़ न होकर एक अन्य जातीय वर्ग की थी, और उसका सम्बन्ध दक्षिण-पूर्वी एशिया की आउस्ट्रिक जाति से था, यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि मालवों के जो बहुत-से सिक्के जयपुर के क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं, उनपर के अनेक नाम न संस्कृत मूलक हैं और न द्रविड़ भाषाओं से उनका कोई सम्बन्ध है। मपम्यन, मजुप, मपोजय, मपय, मगजस, मगज, मगोजव, गोजर, मसप, मपक, पच्च, मगच्च, गजव, जामक, जमपय और पय सदृश जो नाम मालव सिक्कों पर विद्यमान हैं, वे किसी ऐसी भाषा के हैं जो भारत की संस्कृत आदि भाषाओं से सर्वथा भिन्न थी। साथ ही, यह भी ध्यान देने योग्य है कि संज्ञावाचक इन शब्दों में द्वन्द्वों का प्रयोग किया गया है, जो आउस्ट्रिक भाषाओं की एक अनुपम विशेषता है। पय, म-पय, ज-म-पय और गजव, म-गजव के द्वन्द्व इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं, कि मालव या मालय लोगों की प्रचीन भाषा का आउस्ट्रिक भाषा परिवार के साथ सम्बन्ध था। भारत के ये मालय लोग ही सुवर्णभूमि में जाकर आबाद हुए थे। सुमात्रा की कतिपय मलय जातियों में यह अनुश्रुति भी पायी जाती है, कि उनके पूर्वज भारत से आकर वहाँ बसे थे।

यहाँ हमने उन युक्तियों का अत्यन्त संक्षेप के साथ उल्लेख कर दिया है, जिन द्वारा यह प्रतिपादित किया जाता है, कि पहली-दूसरी सदियों से भी बहुत पहले भारत की प्राचीनतम आदि निवासी जातियों ने—जिनमें मालय या मालव जाति प्रमुख थी—दक्षिण-पूर्वी एशिया के विविध प्रदेशों व द्वीपों को आबाद किया था। पर यह ध्यान में रखना चाहिए, कि यह मत किसी ठोस आधार पर आश्रित नहीं है। मालव गण के लोगों को यदि आर्य व द्रविड़ न मानकर मुण्डा, सन्थाल और खासी लोगों के वर्ग का माना जाए, तभी इस युक्तिपरम्परा में कोई बल हो सकता है। पर मालव गण की स्थिति पहले पंजाब में थी, और बाद में उसने राजस्थान की मरुभूमि में प्रवास किया था। जातीय दृष्टि से मालव लोग अपने पड़ौसी शिवि, क्षुद्रक, क्षत्रिय, कठ, मद्रक आदि गणों के निवासियों से भिन्न थे, यह स्वीकार कर सकना सुगम नहीं है। यदि यह माना जाए, कि इन सब गणों के लोग भी आउस्ट्रिक वर्ग के ही थे, तो यह भी संगत नहीं होगा। इस दशा में मालय व मालव जाति द्वारा दक्षिण-पूर्वी एशिया को आबाद करने की बात को अभी एक ऐसा तथ्य नहीं समझ लेना चाहिये, जिसके सम्बन्ध में मतभेद की कोई गुंजाइश न हो। मुण्डारी, खासी आदि भाषाएँ बोलने वाले भारत के लोग अब तक भी सभ्यता में बहुत पिछड़े हुए हैं। पर जिन मालवों ने सिकन्दर के आक्रमण का वीरतापूर्वक सामना किया था, वे पंजाब के अन्य गणराज्यों के लोगों के समान ही सभ्य तथा उन्नत थे। सम्भवतः, वे आर्य जाति के ही थे और उनका मुण्डा आदि जातियों से कोई सम्बन्ध नहीं था। स्मिड्ट और सिल्वां लेवी सदृश विद्वानों ने जिस मत का प्रतिपादन किया है, उसकी उपेक्षा तो नहीं की जा सकती, पर उस पर और अधिक विचार किया जाना चाहिये।

Scanned with CamSc